Original Research Paper

Volume : 5 | Issue : 11 | November 2016 • ISSN No 2277 - 8179 | IF : 3.508 | IC Value : 69.48

vkpk;l ve`rpn : cgEkk.Mh; fopkj

Social Science

KEYWORDS:

ikQs l j Mk- ch-, y- lBh,

पीच.डी.,डी.लिट् निदे ाक त्रिलोक उच्चस्तरीय अध्ययन एवं अनुसंधान संस्थान जयपुरए राजस्थान ।

"kks/kkFkh 'kkfUr dqekj ikVhy

सामाजिकविज्ञान संकाय राजस्थान वि ववविद्यालय, जयपुर राजस्थान ।

ykd dh mRifÙk ,o fouk'k &

जैन दर्शन में प्ररूपित अकृत्रिम विश्व की परिकल्पना को वैज्ञानिक प्रथम 'स्टैडी स्टेट थ्योरी' के नाम से पुकारते हैं । इसके अनुसार विश्व की उत्पत्ति नहीं हुई तथा विनाश भी नहीं होगा। इस दुनिया के विनाश के संबंध मे भी सैकडों बार भविष्यवाणियाँ हो चुकी है, किन्तु वे सब की सब असत्य निकली। वस्तुतः इस दुनियाँ को किसी ने बनाया नहीं है तथा इसे मिटाया भी नहीं जा सकता।

ykd vdf=e g&

जिसे किसी ने न बनाय हो, जो कभी बना ही न हो, जिसका प्रारम्भ न हो, सदा से ही हो, उसे अकृत्रिम कहते हैं। जैनदर्शन के अनुसार लोक अकृत्रिम है, इसे बनाने वाला कोई ईश्वर नहीं है। तथा इसे मिटाया भी नहीं जा सकता, अतः इसे अनादि–अनिधन कहा गया है।

करकंडचरिउ में लोकानुप्रेक्षा का वर्णन करते हुए मुनि कनकामर कहते है – जैसे गगनांगन में रवि रहता है, उसी प्रकार लोक को काई धारण करने वाला नहीं है, जैसे आकाश क्रिया विहीन है, वैसे ही लोक अकृत्रिम है।

आचार्य जिनसेनस्वामी ने अनेक तर्क देकर सृष्टि कर्त्तावाद का निराकरण करते हुये इस लोक को अकृत्रिम सिद्ध किया है। वे कहते हैं न इसे कोई बना सकता है न इसका संहार कर सकता है, यह हमेशा अपनी स्वाभाविक स्थिति में विद्यमान रहता हैं। वह किसी के द्वारा बनाया हुआ नहीं है तथा किसी हरिहरादि के द्वारा धारण (रक्षा) किया हुआ नहीं है।

गीता में भी इसी बात की पोषक पंक्ति मिलती है – 'न कर्तृत्वं न कर्माणि, न लोकस्य सृजति प्रभु।' अर्ताथ न परमात्मा ने इस लोक की रचना की है और न वह इसका कर्ता–धर्ता है।

पण्डितप्रवर टोडरमलजी ने सृष्टि के ईश्वर कर्तृत्य का निषेध एवं लोक के अनादि निधन पने की पुष्टि बहुत ही तार्किक शैली में की है, जो मूलतः पठनीय है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्सटीन के विश्व संबंधी बेलन सिद्धान्त ;ब्लसपदकमत जीमवतल व िन्दपअमतेमद्ध में 'यह विश्व अनादिकाल से ऐसा ही चला आ रहा है और ऐसा ही चलता रहेगा', इसी प्रकार की मान्यता व्यक्त होती है।

जैन दर्शन के अनुसार कोई भी वस्तु नई उत्पन्न नहीं होती तथा किसी भी वस्तु का सर्वथा नाश भी नहीं होता। मात्र उनकी अवस्थायें बदलती है। वस्तु अपने मूलस्वरूप से ध्रुव है। अवस्था या रूप बदलने पर नवीन अवस्था की दृष्टि से उसे उत्पन्न तथा पूर्व अवस्था अब नहीं रही इस अपेक्षा से उसे नष्ट होना बताया जाता है। इस तरह प्रत्येक वस्तु उत्पाद–व्यय और ध्रुवता से युक्त है। उमास्वामी आचार्य कहते हैं– पदार्थ का लक्षण सत् है और वह सत् उत्पाद–व्यय और ध्रुवता से सहित होता है। उनके मूल शब्द इस प्रकार हैं–सत्द्रव्यलक्षणम्, उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् 4

vk/kfud foKku Hkh इस तथ्य को स्वीकार करने लगा है। वैज्ञानिक मानते हैं कि शक्ति या मात्र कभी नष्ट नहीं होती, वह अन्य रूप में परिवर्तित हो जाती है। रसायन विज्ञान से यह बात आसानी से स्पष्ट हो जाती है। जिसे हम कोयले का जलना कहते हैं, उसे रसायन विज्ञान में निम्न रासायनिक क्रिया द्वारा व्यक्त किया जाता है –

$C + O_2 = CO2 +$ ऊर्जा
(कार्बन) (ऑक्सीजन) त्र (कार्बनडायऑक्साइड) ऊर्जा

भौतिक विज्ञान द्वारा इस क्रिया का विश्लेषण करें तो ज्ञात होता है कि कार्बन अणु ;ब्द्ध में 6 प्रोटान, 6 न्यूट्रान, एवं 6 इलेक्ट्रान थे तथा ऑक्सीजन के अणु ;व्2द्ध में 16 प्रोटान, 16 न्यूट्रान, एवं 16 इलेक्ट्रॉन थे। कार्बन और आक्सीजन मिलकर बनी कार्बनडांय आक्साइड में 22 प्रोटॉन, 22 न्यूट्रान, एवं 22 इलेक्ट्रान हैं, अर्थात जलने के बाद भी प्रोटोन, न्यूट्रान, एवं इलेक्ट्रान की संख्या उतनी ही है, जितनी पहले थी तब फिर क्या नष्ट हुआ, क्या उत्पन्न हुआ ? वास्तव में कार्बन और आक्सीजन रूप अवस्था नष्ट होकर कार्बनडाई आक्साइड रूप अवस्था उत्पन्न हुई और उनका द्रव्य प्रोटान इत्यादि ज्यों का त्यों रहा।

इस प्रकार जैनदर्शनमान्य वस्तु की नित्यता को आधुनिक विज्ञान भी मानने लगा है, सिद्ध करने लगा है। कोई भी वस्तु नवीन उत्पन्न नहीं होती, प्रत्येक वस्तु अपने मूल स्वरूप की दृष्टि से देखने पर अनादि से है और उसके मूल स्वरूप को कभी नष्ट भी नहीं किया जा सकता, अतः वह अनंत काल अपेक्षा है। जब कोई द्रव्य नया उत्पन्न नहीं हो सकता, सर्वदा नष्ट नहीं हो सकता तो द्रव्यों के समुदाय रूप लोक भी न किसी से उत्पन्न हुआ है, न कभी इसका नाश होगा। यह लोक स्व – निर्मित / अकृत्रिम / अनादि–अनंत है।

ykd dk LFkku ;k fLFkfr &

जैन दर्शन प्ररूपित यह लोक अनन्तान्त अलोकाकाश के बहुमध्य भाग में स्थित हैं, अलोकाकाश में सिर्फ आकाश है और जहाँ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल– ये पाँच द्रव्य व्याप्त है, वह लोक अथवा लोकाकाश के नाम से जाना जाता है।

आचार्य यतिवृषभ कहते है – जितने आकाश क्षेत्र में धर्म और अधर्म द्रव्य के निमित से होने वाली जीव और पुद्गलों की गति एवं स्थिति हो, उसे लोकाकाश समझना चाहिये। छह द्रव्यों से सहित यह लोकाकाश का स्थान निश्चय ही स्वयं प्रधान है, इसकी सब दिशाओं में नियम से अनंत शुद्ध अलोकाकाश स्थित है। आचार्य कार्तिकेयस्वामी लोक का स्थान बताते हुये कहते है कि आकाश द्रव्य का क्षेत्र अनन्त है, उसके बहुमध्य भाग में लोक स्थित है। आचार्य उमास्वामी आकाश के प्रदेशों की संख्या अनन्त5 बताते है, उसके मध्य में असंख्यात प्रदेशी लोकाकाश है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता हैं कि अनन्त–असीम आकाश के मध्य सीमित क्षेत्र में जहाँ छह द्रव्य पाये जाते हैं, वह लोक है।

Ykkd d i dkj &

जैन दर्शन अनेकान्तवादी दर्शन है। यहाँ विविध अपेक्षाओं से देखने पर लोक के विविध प्रकार बताये गये हैं। मूलाचार में लिखा है –

bxfogk [kyq ykvk nfogk frfogk rgk cgfogk okA
n0ofg iTt ,fg fpfrT;k yk; lCHkkoAA

यह लोक सामान्य की अपेक्षा एक प्रकार का है। लोक्यन्ते उपलभ्यन्ते जिसमे पदार्थ उपलब्ध होते हैं, वह सामान्य से एक लोक है। अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के भेद से लोक के दो प्रकार है। अधोलोक, ऊर्ध्वलोक और मध्य लोक के भेद से लोक के तीन भेद होते हैं अथवा उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य के भेद से लोक के तीन भेद होते हैं। चतुर्गति अथवा द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव की अपेक्षा लोक के चार भेद हैं। पंचास्तिकाय अथवा पंच परावर्तन की अपेक्षा लोक को पाँच प्रकार का कहा गया है। सम्पूर्ण लोक षट् द्रव्यात्मक है, अतः वह छह प्रकार का है। द्रव्य और पर्यायों की अपेक्षा से लोक बहु प्रकार के हैं। लोक के नौ भेद बताते हुये आचार्य बट्टकेर लिखते हैं–

लोक के निक्षेप द्वारा 9 भेद माने गये हैं–
1 नाम लोक 2. स्थापना लोक 3. द्रव्य लोक 4. क्षेत्र लोक 5. चिन्ह लोक 6. कषाय लोक 7. भव लोक 8.भाव लोक 9. पर्याय लोक। इन सभी की संक्षिप्त व्याख्या भी वहाँ की गई है। उसकी चर्चा यहाँ अपेक्षित / विवक्षित नहीं है।

क्षेत्र की अपेक्षा से तिलोयपण्णत्ती आदि ग्रन्थों में लोक को तीन भागों में ही विभाजित किया गया है। सम्पूर्ण लोक अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक के भेद से तीन प्रकार का है। धवला में लोक के पाँच प्रकारों का उल्लेख मिलता है। अधोलोक, मनुष्य लोक, तिर्यक्लोक, ऊर्ध्व लोक और सामान्य लोक।

रचनात्मक दृष्टि से लोक के तीन ही भेद हैं। उक्त पंच प्रकारों में सामान्य लोक तो तीन लोक ही है तथा मनुष्य लोक को तिर्यक्लोक (मध्य लोक) में गर्भित कर लिया जाता है। इनके अतिरिक्त आगमों में सिद्ध लोक, ज्योतिष लोक, व्यंतर लोक, भवन लोक, त्रस लोक, स्थावर लोक आदि की चर्चायें भी मिलती हैं, किन्तु वे सभी ऊर्ध्व मध्य, अधो – इन सभी लोक में गर्भित हो जाते हैं। इस प्रकार लोक की तीन संख्या निर्बाध सिद्ध है। आचार्य अमृतचन्द्र ने लोक के भेद व आकार वताते हुए लिखा है – पेज 76 श्लोक 177 का अर्थ।

rhu ykd dk foHkktu dk vk/kkj &

तीन लोक के विभाजन का आधार मेरू पर्वत है। इसकी मेरू संज्ञा तीन लोक का मानदण्ड होने से ही है। अर्थात सुमेरु शिखर के ऊपर से ऊर्ध्वलोक, मेरू के अधोभाग के नीचे अधोलोक तथा मेरू की ऊँचाई प्रमाण मध्य लोक है। इनकी पृथक–पृथक् ऊँचाई बताते हुये आचार्य कार्तिकेयस्वामी मूल गाथा मे लिखते हैं–

अर्थात् मेरू के नीचे के भाग में सात राजू अधोलोक है, मेरू से उपर सात राजु ऊर्ध्वलोक है तथा मेरू की ऊँचाई के समान मध्य लोक है। इस संदर्भ में आचार्य यतिवृषभ कहते हैं – 'अधोलोक की ऊँचाई 7 राजु, मध्य लोक की ऊँचाई 1 लाख योजन और ऊर्ध्वलोक की ऊँचाई 1 लाख योजन कम 7 राजु है।'

सुमेरू पर्वत की ऊँचाई एक लाख चालीस योजन है, मध्य लोक मेरू के बराबर है, अतः उसकी ऊँचाई भी इतनी ही है। मेरू पर्वत के शिखर से एक बाल की मोटाई बराबर अन्तर से उपर ऊर्ध्व लोक है तथा मेरू पर्वत के नीचे 7 राजु प्रमाण क्षेत्र अधोलोक है।

लोक का आकार – इस सान्त–ससीम लोक का एक निश्चित आकार माना गया है। किसी व्यक्ति द्वारा अपने दोनों पैरों को फैलाकर दोनों हाथ कमर के उपर रखकर खडा होने पर जो आकृति बनती है, वह लोकाकृति है। छत्रचूड़ामणि में षट् द्रव्यमयी एवं वातवलयों से वेष्टित इस लोकाकृति के लिये 'पुरूषाकार' शब्द का प्रयोग मिलता है। पं. भूधरदासजी ने बारह भावना में कहा है – चौदह राजु उत्तंग नभ, लोक पुरूष संठान अर्थात लोक का संस्थान पुरूष के समान

है, जिसकी ऊँचाई चौदह राजु है। आदिपुराण में इस लोक का वैसाखी पर खड़े हुए तथा कमर पर हाथ रखे हुए पुरूष के रूप में कल्पित किया है।

भगवती सूत्र मे लोक के लिये 'सुप्रतिष्ठक' आकार शब्द का प्रयोग मिलता है। इसका अर्थ बताते हुये कहा है कि लोक का आकार त्रिशरावसम्पुटाकार है। अर्थात तीन शिकोरों में से एक को उल्टा रखें, फिर दूसरे को उसके उपर सीधा एवं तीसरे को फिर उसके उपर उल्टा रखने से जो आकार बनेगा वही त्रिशरावसम्पुटाकार लोक है।

तीन लोकों के आकार को भिन्न–भिन्न उदाहरण से स्पष्ट करते हुये यतिवृषभाचार्य कहते है – अधोलोक का आकार स्वभाव से वेत्रासन के सदृश और मध्यलोक का आकार खड़े किये हुये आधे मृदंग के ऊर्ध्व भाग के समान तथा ऊर्ध्व लोक का आकार खड़े किये हुये मृदंग सदृश है। आचार्य पअनंदी ने भी तीनो लोकों की आकृति बताने के लिए पृथक–पृथक उदाहरण दिये हैं। वे कहते हैं कि – यह लोक नीचे, मध्य और उपर क्रम से वेत्रासन, झल्लरी व मृदंग के सदृश है।

Ykkd dk foLrkj

लोक के तीन आयाम (ऊँचाई/लम्बाई, गहराई, चौड़ाई) में से प्रथम आयाम (ऊँचाई/लम्बाई) 14 राजु प्रमाण है। दूसरा आयाम (गहराई) सर्वत्र 7 राजु है तीसरा आयाम (चौड़ाई) सारे लोक में समान नहीं है। इसकी चौड़ाई बताते हुये कार्तिकेयस्वामी लिखते हैं कि –

सतेक्क पंच इक्का, मूले मज्झे तहेव बंभते।
लोयन्ते रज्जूओ, पुव्वावरदो य वित्थारो।।

अर्थात लोक का पूर्व – पश्चिम दिशा में विस्तार मूल में सात राजु मध्य में एक राजु, ऊपर ब्रह्मस्वर्ग के अन्त में पाँच राजु और लोक के अन्त मे एक राजु विस्तार है। इसी प्रकार की बात त्रिलोकसार एवं तिलोयपण्णती में भी प्राप्त होती है, वहाँ कहा गया है –

14 राजु उत्तंग इस लोक का आयाम उत्तर–दक्षिण जगत श्रेणी के बराबर अर्थात् 7 राजु है। पूरब–पश्चिम विस्तार अधोलोक में 7 राजु, फिर क्रमशः घटते–घटते मध्यलोक मे 1 राजु फिर ऊर्ध्वलोक में ब्रह्मस्वर्ग तक बढते – बढते 5 राजु तथा फिर क्रमशः घटते हुये लोक के अन्त में 1 राजु है।

lUnHk xzUFk lph

1 आचार्य अमृतचंद तत्तवार्थसार श्लोक संख्या 176 प्रकाशक श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला, वाराणसी–5, 2001
2 तत्त्वार्थसार
3 तत्त्वार्थसार, 5/1
4 तत्त्वार्थसार, 5/29–30
5 तत्त्वार्थसार, 5/9
6 तत्त्वार्थ राजवार्तिक, 3/10/181/6
7 तत्त्वार्थसार, 3/1
8 तत्त्वार्थसार, 1/20/पृ.76/पं. 12
9 तत्त्वार्थसार, 2/14